यौनिक हिंसा सरकार और समाज का रवैया

मीता राधाकृष्णन

बलात्कार औरत पर होने वाली तमाम हिंसाओं में से एक है। इससे हमारे तन और मन पर चोट लगती है। क्या मारपीट, छेड़छाड़ और अन्य हिंसा से यह नहीं होता? पर चूंकि बलात्कार के साथ हमारी इज़्ज़त का मसला जुड़ा है, इसलिए इसे हमारे खिलाफ़ हथियार के रूप में इस्तेमाल किया जाता है। इसलिए ज़रूरत है बलात्कार को लेकर रवैया बदलने की। सिर्फ़ इज़्ज़त का मसला न मानकर इसे औरत पर होने वाली हिंसा के बड़े दायरे में देखना होगा। इससे पुरुष वर्ग इसका डर दिखा कर हम पर हुकूमत नहीं कर पाएगा। अगर हम सोचेंगे क्या हुआ अगर बलात्कार हुआ, तो पितृसत्ता को चोट पहुंचेगी। मतलब यह नहीं कि मुजरिमों को खुली छूट मिले या कोर्ट उनकी सज़ा कम करने का हक हासिल करे। बल्कि इससे उबर कर हम इसके खिलाफ़ संघर्ष की नई ताकत पैदा करें और थोड़ा और चैन से जी पाएं।

इस लेख के माध्यम से हम अपने कुछ सवाल और विचार आपके सामने रख रहे हैं। ये सवाल मन में सुलग तो न जाने कब से रहे थे। पर सामने आए भंवरी बलात्कार केस के दौरान हिंसा विरोधी अभियान में और इनके साथ व्यक्तिगत जीवन में हिंसा के खिलाफ़ संघर्ष के दौरान।

सवाल एक: न्याय क्या है?

सबसे पहला सवाल है, हम औरतों के लिए हिंसा क्या मायने रखती है। हमारे लिए न्याय का क्या मतलब है? भंवरी साथिन के लिए न्याय का

अर्थ हो गया बलात्कारियों के लिए एक दिन की जेल। भंवरी ने सोचा, इससे गांव वाले उसका विश्वास कर पाएंगे और उसके साथ हो जाएंगे। पर भंवरी और उसके जैसी अनेक औरतों ने इस न्याय को पाने के लिए सरकार और अदालत का दरवाजा क्यों खटखटाया?

ग्यारसा गूजर को सरकार ने महिला समूहों के दवाब में आकर हिरासत में ले लिया। यह बात दूसरी थी कि वह अस्पताल में था और दूसरे खुले-आम घूम रहे थे। गूजर की भी जमानत हो गई। साथ ही दूसरे अभियुक्तों की भी जमानत गिरफ्तार होने से पहले ही हो गई थी।

दूसरा केस है जिसमे सर्वोच्च न्यायालय ने दो बलात्कारियों की सजा सात साल से घटा कर तीन साल कर दी। दोनों को यह सजा कर्नाटक उच्च न्यायालय ने दी थी। उनका अपराध था कि उन्होंने चाकू दिखाकर एक औरत की जबर्दस्ती इज्जत लूटी थी। सर्वोच्च न्यायालय ने अपने फैसले में कहा कि जुर्म के समय दोनों लड़के 'कच्ची' उम्र के थे। उन पर वासना का भूत सवार था। दूसरे,

वह औरत उनके कमरे में अपनी मर्ज़ी से आई थी। इन दोनों ने पंद्रह साल तक चलने वाली कानूनी कार्यवाही में जो "मानसिक यातना" झेली वह भी एक तरह की सज़ा ही थी। इन न्याय के ठेकेदारों के लिए औरत की यातना कोई मायने नहीं रखती।

जब बलात्कार की वारदात के बाद औरत कचहरी में पेश होती है तो कदम-कदम पर उसके चरित्र पर सवाल उठाए जाते हैं। केस के फैसले में बरसों लग जाते हैं। और जब फैसला होता है तो सामने आता है न्याय का पितृसत्तात्मक रवैया। वह मर्द की तरफदारी करता है। कोर्ट को औरत के मानवीय अधिकारों के हनन से कोई सरोकार नहीं। उसको सरोकार है औरत की इज्ज़त से, औरत की यौनिकता पर मर्द के अधिकार के सवाल से। इतना सब जानने-समझने के बावजूद हम 'फैसला' कराने कचहरी में जाते हैं। सवाल है कि हम ऐसा क्यों करते हैं जबकि हम जानते हैं कि कानून का रुझान हमारे खिलाफ होगा।

सवाल दो: बलात्कार क्यों होते हैं?

हमारा दूसरा सवाल है, बलात्कार क्यों होते हैं? हमारे समाज में इसकी क्या जगह है? इसका जवाब जानने के लिए हमें समाज में औरतों पर होने वाली हिंसा के विभिन्न रूपों को देखना होगा। बलात्कार तो तमाम हिंसाओं का सिर्फ एक रूप है। यौन अत्याचार, मारपीट, पत्नी प्रताड़ना, बाल-विवाह, दहेज, बेरुखी, भेदभाव, गरीबी, सती, शादी में बलात्कार, सांप्रदायिक हिंसा, पुलिस, जवान और अस्पतालों में हिंसा और मानसिक हिंसा भी तो औरत पर होने वाली हिंसा के ही रूप हैं। फिर जब हिंसा के इतने सारे रूप सामने हैं तो बलात्कार को इतना महत्व क्यों? शायद इसलिए कि बलात्कार जुड़ा है 'इज्ज़त' के सवाल से। और बलात्कार इन सभी तरह की हिंसा के सहारे बिना नहीं हो पाते।

हिंसा और डर के इस ढांचे को कायम रखने के लिए समाज सहारा लेता है भौतिक ताकतों का। साथ ही सहारा लिया जाता है विचारधारा का—जिससे औरत या तो उस ढांचे में एक मोहरा बन जाती है या सभी शर्तों को मान हालात से समझौता कर लेती है। विचारधारा के इस नियंत्रण के बगैर भौतिक ताकतें बेअसर हो जाती हैं। इसलिए औरत को विश्वास दिला दिया जाता है कि इस शोषण से बचने का कोई उपाय नहीं है। इसलिए कभी-कभी औरतों को भड़का कर उन्हें एक-दूसरे के खिलाफ़ इस्तेमाल किया जाता है।

औरतों पर होने वाली हर हिंसा यौनिक नहीं होती। पर यौनिक हिंसा की अपनी एक अलग अहमियत होती है। यह अहमियत इसे मिलती है समाज से। यौनिक हिंसा को हथियार के रूप में इस्तेमाल करके औरत पर काबू रखा जा सकता है। उसके वजूद पर पुरुष की ताकत आजमाने का नुस्खा है। हमें सिखाया जाता है कि हमारी सबसे कीमती चीज़ है 'इज्ज़त'। और यौनिक हिंसा से इस 'इज्जत' पर चोट की जाती है।

यौनिक हिंसा से अल्पसंख्यक जाति/समुदाय को भी अधीन रखा जाता है। जाति और समुदाय की लड़ाइयों में औरतों के साथ बलात्कार किया जाता है। चूंकि समुदाय की इज्ज़त होती है औरतें। इस इज्ज़त पर हमला करके ताकतवर समूह अल्पसंख्यकों पर अपना अधिकार जमा लेता है।

तीस साल की शमीम बानो दिल्ली की एक पुनर्वास बस्ती, सुभाष कैंप में रहती है। पंद्रह गज की झुग्गी में बिताए पंद्रह साल। और इन्हीं सालों में आए इतने तूफान—एक ही बेटी पैदा हुई। पड़ोस के तानों से बेटे की उम्मीद सुलगती रही। पर यह आस पूरी नहीं हुई। पति गुज़र गया। शमीम बानो ने फैसला लिया, "एक ही बेटी के सहारे ज़िंदगी निकाल दूंगी। दूसरा पति नहीं करूंगी।"

इन सवालों के जवाब क्या हैं?

क्या हम इस "इज़्ज़त" की परिभाषा नहीं बदल सकते। अगर हम यौनिक हिंसा पर अपना नज़रिया बदल लें और मान लें कि बलात्कार भी किसी और हिंसा की तरह है, तो हमें यौनिक हिंसा के डर के साए तले नहीं जीना होगा। साथ ही समाज के इस पितृसत्तात्मक ढांचे को चोट पहुंचेगी। यह मानने पर कि बलात्कार हम पर होने वाली तमाम हिंसा में से एक है, हम इज़्ज़त को छोड़कर पूरे समाज को बदलने की कोशिश करेंगे।

हम जानते है कि औरत पर होने वाली हिंसा पितृसत्तात्मक समाज का हथियार है। जब तक हिंसा को जड़ से नहीं उखाड़ फेंकेंगे, तब तक समाज का ढांचा नहीं बदल सकते। धार्मिक कट्टरता, सांप्रदायिकता, राजनीतिक गुंडागर्दी, जातीय भेदभाव और सरकार की योजनाओं ने इस हिंसा के हाथ और मजबूत किए हैं। इसलिए हिंसा पर हमारी लड़ाई समाज के भेदभाव के ढांचे को बदलने का हिस्सा है। इसलिए लड़ाई में हमें सिर्फ़ इस भेदभाव के खिलाफ़ ही नहीं, बल्कि उतने ही जोर से अधीनता की विचारधारा के साथ भी जूझना होगा। □

मीता के लेख का अनुवाद किया जुही ने